

## राजस्थानी काव्य परम्परा में सुदर्शन चरित

□ मुनि श्री गुलाबचन्द्र 'निर्मोही'

युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी के शिष्य

भारतीय भाषाओं में राजस्थानी भाषा का स्वतन्त्र और मौलिक स्थान है। साहित्य एकादमी ने इसे एक स्वतन्त्र भाषा के रूप में मान्यता देकर इस तथ्य को प्रमाणित भी कर दिया है। शताब्दियों पूर्व इस भाषा का जो साहित्य-स्रोत प्रवाहित हुआ, वह क्रमशः विस्तार पाकर अनेक आयामों को अपने में समेटे हुए निरन्तर गतिशील है। भारतीय वाङ्मय में से राजस्थानी साहित्य को पृथक् कर दिया जाए तो एक रिक्तता की अनुभूति होगी।

राजस्थानी भाषा की अनेक अन्तर्भाषाएँ हैं। मारवाड़ी, मेवाड़ी, जयपुरी, बीकानेरी, गाढ़वाली, हाडौती, भीली आदि उनमें प्रमुख हैं। इन भाषाओं में प्रचुर साहित्य भी लिखा गया है। वह समग्र साहित्य राजस्थानी भाषा भी विधाओं का साहित्य कहा जाता है। राजस्थानी साहित्य जीवन-चरित, दर्शन, गणित, ज्योतिष, न्याय, लोकगीत, लोक-कथा, तथा लोकमानस का स्पर्श करने वाले विभिन्न पक्षों पर लिखा गया है। अन्य भाषाओं की तरह राजस्थानी भाषा में सन्त-साहित्य भी पर्याप्त मात्रा में है। प्राचीन काल में राजस्थानी भाषा का कोई व्याकरण न होने के कारण अब तक उसका एक सर्व-सम्मत रूप नहीं है। काव्यकारों ने जिस प्रकार भाषा प्रयोग किया, वही प्रमाण माना जाने लगा।

तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु राजस्थानी भाषा के एक उद्भट कवि हुए हैं। साधना के विषम पथ पर सतत प्रसारणशील रहते हुए उन्होंने जीवनकाल में ३० हजार पद्य प्रमाण साहित्य की रचना की। आचार्य भिक्षु का कवित्व अभ्यास-साध्य नहीं था। वह नैसर्गिक था। कवि बनाये नहीं जाते। वे स्वतः बनते हैं। आचार्य भिक्षु इसके प्रतीक कहे जा सकते हैं। उन्होंने किसी काव्य-ग्रन्थ या अलंकार-शास्त्र का अध्ययन करके कवित्व का प्रशिक्षण नहीं पाया था। हृदय में भावों की उद्वेलना हुई, आत्मसंगीत का उद्गान हुआ और वे शब्दों का संबल पाकर मूर्तरूप में आविर्भूत हो गए। यही उनकी काव्य कला का रहस्य था।

केवल शब्द और अर्थ ही काव्य के उपादान नहीं हैं। वे तो मात्र उसके कलेवर हैं। काव्य की आत्मा तो रस है। इसी के कारण मानव का काव्य के प्रति आकर्षण उत्पन्न होता है। आचार्य भिक्षु के काव्य-ग्रन्थों का सूक्ष्मभण से पारायण करने पर हम पायेंगे कि उनकी पदावलियाँ काव्योचित रस से परिपूरित हैं। उनमें अन्तःश्रेयस् की प्रेरणा देने वाला निर्वेद-निर्झर सतत प्रवहमान है। अपने सहज कवित्व के द्वारा त्रिकाल-सम्मत ध्रुवसत्य को जन-जन तक पहुँचाना ही उनको अभिप्रेत था न कि कवित्व-प्रस्थापन के द्वारा कीर्ति अर्जन करना। इसीलिए कविता उन्होंने की नहीं। वह स्वतः बन पड़ी और अत्यन्त उत्कृष्ट बन पड़ी। उन्होंने अपनी कविताओं में उन दिनों प्रचलित राजस्थानी लोकगीतों तथा लोकजनीन सरल एवं बोधगम्य शब्दों का ही विशेषतः प्रयोग किया है, जिससे वह सहज ही जन-भोग्य बन सके। जिस उदात्त भावना ने सन्त तुलसीदासजी को अपने इष्टदेव का चरित्र ब्राह्मणों के निरन्तर विरोध के बावजूद भी अवधी में लिखने को प्रेरित किया, उसी ने आचार्यश्री भिक्षु को भी जीवन के शाश्वत सत्यों को जन-जीवन तक प्रसारित करने हेतु जन-भाषा का आश्रय लेने की प्रेरणा दी। महान् कवि परिनिष्ठित भाषाओं में नहीं, अपरिष्कृत जन-भाषा में रचना कर उसे समृद्ध बनाते हैं। अतः वे काव्य-भाषा के भी स्रष्टा माने जाते हैं।



### चरित काव्यों की परम्परा

सुदर्शनचरित आचार्य भिक्षु द्वारा रचित सुप्रसिद्ध चरित काव्य है। भारतीय वाङ्मय में चरित-लेखन की परम्परा अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय मनीषियों ने जिस वस्तु या व्यक्ति में आदर्श का निरूपण पाया, उसे जन-मानस के समक्ष रखने का प्रयास किया। महर्षि वाल्मीकि ने भगवान् राम के चरित्र को अपनी रामायण का विषय बनाया। जैन-परम्परा में होने वाले विद्वानों एवं कवियों ने भी तीर्थंकरों तथा अन्य महापुरुषों के चरित-लेखन के द्वारा चरित काव्यों की परम्परा को समृद्ध बनाया। संक्षेप में कहा जा सकता है कि यहाँ के प्रबुद्ध-चेता मनीषियों का इतिवृत्त लिखने का क्रम प्रायः आदर्शानुप्राणित ही रहा है। यद्यपि प्राचीनकाल में अनेक योद्धा, शूरवीर और राजा भी हुए हैं, किन्तु भारत ने उन्हें भुला दिया। भारतीय जन-मानस के लिए केवल इतना ही पर्याप्त नहीं था कि किसी व्यक्ति ने जन्म लिया, राज्य किया या युद्ध किया हो, वह उनमें कुछ और भी विशिष्टता ढूँढने की कोशिश करता है। यदि उसमें कुछ और विशिष्टता नहीं है तो ऐसे व्यक्तियों का होना या नहीं होना एक समान है।

इस प्रवृत्ति के परिहारस्वरूप कुछ ख्यातिप्रिय राजाओं ने अनेक प्रशस्तियों और दरबारी कवियों के काव्यों द्वारा अपने को अमर करने का प्रयास किया। संस्कृत साहित्य में हर्षचरित, नवसाहसार्क चरित्र, पृथ्वीराज-विजय काव्य आदि कुछ ऐसे ग्रन्थ हैं, जिनमें राजाओं का यशोगान पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। किन्तु ये ग्रन्थ भी वर्णित राजाओं की महत्ता से नहीं, किन्तु विशिष्ट कवियों के विलक्षण कवित्व के कारण जीवित हैं। भारत की आदर्शानुप्राणित परम्परा में उसी कृति को अमरत्व मिलता है जो हमारे सामने किसी प्रकार का आदर्श उपस्थित करे। विशेषतः जैन परम्परा में तो महनीय वही है जो क्रमशः वीतरागत्व की ओर गतिमान हो। उसी के प्रभाव से जनता कैवल्य-प्राप्ति के उन्मुख हो सकती है। आचार्य भिक्षु का सुदर्शन चरित इसी उद्देश्य का पूरक है।

**भाषा और शैली**—आचार्य भिक्षु के काव्य-ग्रन्थों की भाषा मुख्यतः मारवाड़ी है। मुख्यतः इसलिए कि उसमें गुजराती की भी एक हल्की सी फुट है। आचार्य भिक्षु का जन्म मारवाड़ में हुआ था। उनका कार्यक्षेत्र प्रमुख रूप से मारवाड़ और मेवाड़ रहा है। उन्होंने अपनी कविता में जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह मारवाड़ी और मेवाड़ी का मिश्रित रूप है। मेवाड़ गुजरात का सीमावर्ती भूखण्ड है, अतः आचार्य भिक्षु की भाषा में गुजराती का भी मिश्रण हुआ है।

आचार्य भिक्षु की रचनाओं में तत्त्वज्ञान, आचार-विश्लेषण, जीवनचरित्र, धर्मानुशासन की मर्यादा आदि मौलिक विषयों का स्पर्श हुआ है। चरितकाव्यों में सुदर्शन चरित का अपना एक महत्त्वपूर्ण और स्वतन्त्र स्थान है। इसमें पात्रों के चरित्र-चित्रण एवं भावों की अभिव्यजनात्मक शैली का अनुपम निदर्शन मिलता है। इसमें विभिन्न रागिनियों में ४२ गीतिकाएँ हैं। इनके साथ दोहों और सोरठों का भी प्रयोग है।

सुदर्शनचरित की रचना से यह प्रतिभासित होता है कि उनकी रचनाएँ सहज हैं, प्रयत्नसाध्य नहीं हैं। भावों के अनुकूल जो शब्द उद्गीर्ण हुए, उन्हें भी प्रयुक्त किया गया है। भौतिक सुखों की नश्वरता का चित्रण करते हुए उन्होंने कितने सरल शब्दों में कहा है—

तीन काल नां सुख देवां तणा, मेला किजै कुल ।  
तेहना अनन्त वर्ग बधारिए, नहीं सिद्ध सुखां के तुल ॥  
ते पिण सुख छै शाश्वता, तेहनो आवे नहीं पार ।  
संसार ना सुख स्थिर नहीं, जातां ना लागे बार ॥  
संसार ना सुख स्थिर नहीं, जैसी आभानी छांय ।  
विणसतां बार लागै नहीं, जैसी कायर नी बांह ॥  
किपाक फल छै मनोहर, मीठो जेहनो स्वाद ।  
ज्यों विषय सुख जाणजो, परगम्या करै खराब ॥

**चरित्र-चित्रण**—सफल कवित्व वह है, जिसमें कवि अपने प्रतिपाद्य का वस्तुचित्र खींच सके। चरित्र-चित्रण में आचार्य भिक्षु ने जो अभिनव काव्य-कौशल प्रदर्शित किया है, वह सचमुच ही अद्भुत है। उनके कवित्व का यह सहज गुण है कि वे अपने प्रतिपाद्य का ऐसा सुन्दर और मार्मिक भावचित्र प्रस्तुत करते हैं, कि गेय-काव्य भी चित्र-पट की तरह दृश्यमान लगने लगता है। अभया रानी सुदर्शन के प्रथम दर्शन मात्र से ही आसक्त होकर अपनी मनो-वांछा की पूर्ति के लिए पण्डिता धाय से निवेदन करती है—

मुझ एक मनोर ऊपनी, बस न रहयो मन मांय ।  
 ए बात लजालू छै घणी, तो नैं कह्याँ बिन सरे नांय ॥  
 हूं वसन्त रिनु खेलण गई, राय सहित वन मंझार ।  
 तिण ठामें चम्पा नगरी तणा, आया घणा नर-नार ॥  
 पुत्र सहित परिवार सूं, तिहां आयो सुदर्शन सेठ ।  
 ओर सेठ घणाई तिहां आविया, ते सहु सुदर्शन हेठ ॥  
 तिणरा अणियाला लोयण भला, जाणेक सोभे मसाल ।  
 मुख पूनमचन्द्र सारखो, तेहनो रूप रसाल ॥  
 काया कंचन सारखी, सूर्य जिसो प्रकाश ।  
 सीतल छै चन्द्रमा जिसो, हंस सरीखो उज्ज्वल छै तास ॥  
 जेहोनें दीठां ओरख्यां ठरै, जेहनो सोम सभाव ।  
 तिण आगे बिजा स्यूं बापड़ा, कुण राणा कुण राव ॥  
 म्हांरो मन लागो तेह सूं, जाणे रहुं सेठ रे पास ।  
 एहवो मनोरथ मांहरो, रात दिवस रही छुं विमास ॥  
 तिण सूं भूख त्रिखा भूले गई, निसदिन रहुं उदास ।  
 मन म्हारो कठेई लागे नहीं, तिण सूं कही छैं तो पास ॥  
 हूं मोही सुदर्शन सेठ सूं, लागो म्हांरो रंग ।  
 तिण सूं मिलूं नहीं त्यां लगे, नित नित गलैं छैं म्हारो अंग ॥

रानी की मनोकामना सुनकर पण्डिता धाय अनेक युक्तियों, उपमाओं एवं उदाहरणों से उसे समझाने का प्रयास करती है, जो अत्यन्त मार्मिक और हृदयस्पर्शी है—

इसड़ी बातां हो बाई कहे मूठ गिवार, थे राय तणी पटनार ।  
 ए बात थाने जुगती नहीं ॥  
 ऊंचा कुल में हो बाई थे ऊपना आण, बले थे छो चतुर सुजाण ।  
 ए नीच बात किम काडिए ॥  
 एक पीहर हो बाई दूजो सासरो जाण, बिहुं पख चन्द समाण ।  
 दोनू कुल छै थारा निर्मल ॥  
 इण बातां हो बाई लाजैं तुम तात, बले लाजैं तुम मात ।  
 पीहर लाजैं तुम तणो ॥  
 एहवी बातां हो बाई लाजैं माय मूसाल, निज कुल साम्हो निहाल ।  
 त्याने लागै घणी मोटी मेंहणी ॥  
 इण बातां हो बाई लागै कुल ने कलंक, लागै पीह्यां लग लंक ।  
 ते सुण-सुण माथो नीचै करै ॥



सासरिया हो बाई लाजै अत्यन्त सांभल ए विरतन्त ।  
 ते पिण नीचो चोगसीउनी ॥  
 एहवी बातां हो सुणसी बाई देश विदेश, वले सुणसी राय नरेश ।  
 निन्दा करसी सह तुमतणी ॥  
 राज मांह हो बाई थारी मोटी मांड, होसी जगत में भाण्ड ।  
 शील बिनां इक पलक में ॥  
 शील बिना हो बाई फिट फिट करे लोथ, अजम अकीरत होय ।  
 नार-नारी मुँह मचकोड़सी ॥  
 पिता सूपी हो बाई घणा पुरुषांरी साख, तिण पर निश्चो राख ।  
 तिण पुरुष तणी सेवा करो ॥  
 पर पुरुष हो बाई जाणो भाई समान, ए सीख म्हारी लो मान ।  
 ज्यूं महिरा वधे थारी जगत में ॥  
 ज्यूं सोभे हो बाई चन्द्रमा सूं रात, तिम नारी नी जात ।  
 शील थकी सोभे घणी ॥  
 नहीं सोभे हो बाई नदी जलबिन लिगार, तिम नारी सिणगार ।  
 शील बिना सोभे नहीं ॥  
 शील बिना हो बाई लागे कुलनें कुलक, ज्यूं राजेसर लंक ।  
 तिण कुलने कलंक चढावियो ॥  
 शील थकी हो सीता हुई गुणवंत नार, ते गई जन्म सुधार ।  
 कुल निर्मल कर आपणो ॥  
 शील बिनां हो बाई जसोधरा नार, तिण कंत ने न्हांखो मार ।  
 मरनें छडी नरके गई ॥  
 शील थकी हो बाई बध्यो द्रोपदी नो चीर, पाल्यो शील सधीर ।  
 तिण जन्म सुधार्यो आपणो ॥  
 शील थकी हो थारी मोती जिसी आब, ते पिण उतरसी सताब ।  
 शील बिनां एक पलक में ॥  
 म्हारी मतीसूं हो बाई सीख छूं छूं तोय, निज कुल साम्हो जोय ।  
 पुरुष परायो परहरो ॥

आचार्य भिक्षु ने अपनी प्रखर प्रतिभा का प्रयोग सुन्दर शब्दों की खोज व अलंकार और उपमाओं को गढ़ने में नहीं किया। फिर भी शब्दों की सज्जा अर्थानुकूल प्रयोग एवं अन्तःस्पर्शी सहजभाव व अनुस्यूत होकर जीवन रस को आप्लावित करने वाली काव्य की अमर धारा बन गई है। उपरोक्त पदावली में सहज और सरल भाषा में उपमा, अलंकार और उदाहरणों का एक समां बंध गया है, जो काव्य और जीवन के अन्तःस्रोत को निरन्तर प्रवहमान रखता है।

पण्डिता धाय की उचित शिक्षा सुनने पर भी रानी नहीं समझ सकी, प्रत्युत अपनी कार्य-सिद्धि के लिए कहती है कि यदि मेरा मनोरथ सफल नहीं होगा तो मुझे कपिला (ब्राह्मणी) के सम्मुख नीचा देखना पड़ेगा। इसलिए अपनी मान-मर्यादा और वचन की रक्षा के लिए मैं एक अकार्य भी कर लूँ तो क्या हानि है? क्योंकि अपनी वचन-रक्षा के लिए बड़े-बड़े राजाओं ने भी अनेक अकार्य किये हैं और दुःसह कष्ट उठाये हैं—

आशा अलूधी हूँ रहूँ, जो हूँ बस न कहूँ सेठ ।  
तो कपिला वचन ऊँचो रहे, म्हारो वचन रहे हेठ ॥

× × ×

सेठ सुदर्शन सूँ सुख भोगवी, म्हारो ऊपर आणूँ बोल ।  
ज्यूँ कपिला ब्राह्मणी तिणकनेँ, रहे हमारो तोल ॥  
वचन काजे बड़ा-बड़ा राजवी करे अनेक अकाज ।  
तो एक अकारज करतां थकां, मोने किसी छै लाज ॥

× × ×

वचन काजे हो धायजी, हरिश्चन्द्र बड़ा वीर ।  
भरियो डूमघर नीर, नीचतणी सेवा करी ॥  
वचन काजे हो श्री लछमन ने राम, ज्यां को प्रसिद्ध नाम ।  
बारे वर्ष वन में रह्या ॥  
वचन काजे हो धायजी हनुमंत बड़वीर, गयो लंका नी तीर ।  
सीताजी रे संदेशड़े ॥  
राम दियो हो वभीखण ने लंकानो राज, करी रावण को अकाज ।  
लंकपति वभीखण ने थापियो ॥  
पांचू पांडू हो धायजी वचनां के काज, गया जब हारी ने राज ।  
नगर वेराट सेवा करी ॥  
वचन चुको हो त्यारी न रहीजी शर्म, इणरो तो ओहिज मर्म ।  
ज्यूँ हूँ पिण खपूँ म्हारा वचन ने ॥

रानी की बात सुनकर पंडिता धाय उसे मृत्यु-दण्ड का भय दिखलाती है कि यदि राजा को इस बात का पता चल जायेगा तो वह तुम्हें बिना मौत मरवा देगा—

एहवा वचन हो बाई सुणसी श्रीमहाराज, तो थासी बड़ो अकाज ।  
मौत कुमौत कर मारसी जी ॥  
ओर सगला हो बाई लागा थारे प्रसंग, त्यांरो पिण होसी भंग ।  
इण बातां में सांसों को नहीं ॥  
तिण कारण हो बाई कहूँ छूँ ताय, निज मन ल्यो समझाय ।  
ग्रही टेक पाछी परहरो ॥

धाय की दण्ड नीति का प्रत्युत्तर देती हुई रानी भेद-नीति का आश्रय लेने को कहती है । सच है भोगासक्त मनुष्य क्या नहीं करता ? क्योंकि “कामातुराणा न भयं न लज्जा” । वह विविध उपक्रमों का सहारा लेता है । रानी मृत्यु-भय का प्रतिकार एवं कार्य-पूर्ति का उपाय बताती है—

सेठ ने हो धाय तुम ल्यावो छिपाय, ज्यूँ नहीं जाणे राय ।  
पाछो पिण छाने पोंहचावज्यो ॥  
छाने आण हो छाने दीज्यो पोंहचाय, तो किम जाणसी राय ।  
थे चिन्ता करो किण कारणे ॥

पण्डिता धाय, रानी की इस छलपूर्ण नीति की सफलता में सन्देह प्रकट करती है—

धाय भाखे हो छानी किम रहसी बात, राय करसी तुम घात ।  
ए बात छिपाई ना छिपे ॥



पर पुरुष हे बाई जाणो लसण समान, तेखूणे वंस खाये जाण ।  
जिहाँ जावे तिहाँ परगट हुवे ॥  
सेठ चारू है बाई चम्पानगर मझार, थे राय तणी पटनार ।  
तरे छिपाया किम छिपे ॥

पण्डिता धाय की प्रत्युक्ति बहुत ही सुन्दर बन पड़ी है। ऐसा लगता है कि यहाँ कवित्व अपने चरम उत्कर्ष पर पहुँच गया हो। आचार्य भिक्षु की रचनाओं में स्थान-स्थान पर उपमा और अलंकार भरे पड़े हैं। उपमा कौशल वही है जो प्रतिपाद्य का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करता है। संस्कृत साहित्य में उपमा के क्षेत्र में कालिदास की कोटि का अन्य कवि शायद आज तक नहीं हुआ हो, किन्तु राजस्थानी काव्य-साहित्य में आचार्य भिक्षु ने विभिन्न स्थलों पर जिस प्रकार के उपमा अलंकार और रूपक प्रयुक्त किये हैं, उनसे काव्य में एक अनुपम सजीवता निखर उठती है। वर्ण्य-वस्तु का वैध एवं स्पष्टव्य सहज उपमाओं से उपमित होकर उनकी प्रखर प्रतिभा की अभिव्यक्ति करते हैं। सभी धर्म-शास्त्रों में नारी के लिए पर-पुरुष एवं पुरुष के लिए पर-नारी त्याज्य माने गये हैं। धर्मशास्त्रों की इस मर्यादा का उल्लंघन करने वाला आत्म-नतन व लोक-निन्दा का भाजन बनता है। पतिव्रत एवं पत्नीव्रत समाज व्यवस्था के न्यूनतम विधान हैं। इनका उल्लंघन करके कोई व्यक्ति अपने पाप को छिपा नहीं सकता। पतिव्रत का खण्डन करने वाली स्त्री के लिए पर-पुरुष को आचार्य भिक्षु ने लहसुन की उपमा दी है। जिस प्रकार लहसुन खाकर कोई भी व्यक्ति किसी भी कोने में छिप जाये, किन्तु उसका मुँह उसकी साक्षी दे ही देगा। लहसुन की वास स्वतः प्रकट हो जाती है, वह छिप नहीं सकती। उसी प्रकार पर-पुरुष का अवैध सम्बन्ध भी किसी प्रकार छिप नहीं सकता। सृष्टि के सहज विधान को उसकी गोपनीयता स्वीकार नहीं है। लहसुन की लोक-जनीन उपमा आचार्य भिक्षु की चमत्कारपूर्ण कुशाग्र मेधा की सूचक है। पण्डिता धाय के युक्तिसंगत तर्क का कोई भी प्रत्युत्तर रानी के पास न था। किन्तु काम परवश व्यक्ति अपनी इच्छा-पूर्ति के लिए कितना आतुर हो उठता है इसका भी बहुत सुन्दर चित्रण रानी के शब्दों में मिलता है—

होणहार हो होणो ज्यूं होसी मोरी माय, सेठ ने ल्यावो वेग बुलाय ।  
नहीं तो कण्ठ कटारी पहरी मरू ॥

विकारों की परवशता प्राणी को अपने कर्तव्य से च्युत कर देती है। वह अपने हिताहित को विस्मृत कर लेता है। उसका खाना-पीना भी छूट जाता है। यहाँ तक कि अपनी इच्छा पूर्ति न होने पर मरने को भी उद्यत हो जाता है। मानव-समाज की यह बहुत बड़ी दुर्बलता है कि मनुष्य अपने इष्ट का संयोग न मिलने पर आत्महत्या के लिए उतारू हो जाता है, मस्तिष्क का सन्तुलन तो रहता ही नहीं। भावी में मिलने वाले प्रतिफल की कोई चिन्ता नहीं रहती। वह नियति के धूमिल भविष्य पर अपना सत्त्व छोड़ देता है। धाय भी रानी को समझाकर हार जाती है। व्याकुल होकर रोने लगती है—

धाय रोवे हो सुण राणी रा वेण, आसूँडा नाखे छँ नेण ।  
कर मसले माथो धूणती ॥  
मोटा कुल में हो इसड़ी हुवे बात, जब किहाँ थी हुवे बात ।  
कोई विघ्न होसी इण राज में ॥  
पूर्व संच्या हो उदे आया दीसे पाप, उपनों एह सन्ताप ।  
सुख माहे दुख उपनो घणो ॥

पण्डिता धाय लाचार होकर हाथ मलती है और शिर धुनती हुई विचार करती है—“हाय ! जब बड़े कुल में भी ऐसी बातें होने लगती हैं, तब दूसरों की तो बात ही क्या ? अथवा इसमें आश्चर्य भी क्या है ? बड़े व्यक्तियों

की छाया में अधिकांशतः अव्यवस्था होती ही है? दीपक तिमिराच्छन्न सृष्टि को आलोकित करता है, किन्तु उसके स्वयं के नीचे अंधेरा पलता है। संस्कृतज्ञों की भाषा में—

चित्रं किं महतां तले क्षितितले प्रायो व्यवस्थाधिका ।

दीपे प्रज्वलितेप्यधोऽत्र तिमिरं स्यान्नव्यता कापि नो ॥

धाय मन ही मन विचार करती है कि इस राज्य में किसी बड़े अनिष्ट की सम्भावना लगती है, तभी तो रानी अपने धर्म को छोड़ने के लिए उद्यत है। ऐसा लगता है कि मानो पूर्व जन्मोपाजित पाप उदय में आये हों। सर्वत्र सुख ही सुख में एकाएक दुःख उत्पन्न हो गया। इसके निवारण के लिए मैं कर भी क्या सकती हूँ? मेरे लिए हाथ मलने और सिर धुनने के अतिरिक्त और है ही क्या? इसीलिए तो विद्वानों ने कहा है—

कार्ये नो महतां ब्रवीति मनुजः क्षुद्रो न शक्तोऽपि सः ।

मार्जारस्य च मासुरीं किमु कदा सूच्यास्य उत्पाटयेत् ॥

बड़ों के काम में क्षुद्र मनुष्य कुछ नहीं बोलता। वह बोले भी कैसे? क्योंकि वह समर्थ भी नहीं है। क्या चहा कभी अपनी इच्छा होने पर भी बिल्ली की मूँछ उखाड़ सकता है। बेचारी धाय मन ही मन पछता कर रह जाती है। वह कुछ कर नहीं सकती। उसे न चाहने पर भी रानी की इच्छा-पूर्ति के लिए तत्पर होना पड़ता है। सच है दासता मानव-सृष्टि का एक बहुत बड़ा अभिशाप है। पण्डिता धाय और अभया रानी का यह पारस्परिक संवाद सुदर्शन चरित का महत्त्वपूर्ण भाव-चित्रण है, जिसमें आचार्य भिक्षु के उद्भट कवित्व की अमर रसधारा से सुन्दर निखार आ गया है।

वस्तु निरूपण—आचार्य भिक्षु परम साधक थे। बिना किसी पक्ष और स्पर्धा के उनकी चिन्तन-धारा वस्तु-सत्य के अन्वेषण में ही बही। वास्तविकता का यथार्थ निरूपण ही उनका परम लक्ष्य था। यही कारण है कि उनका काव्य विभिन्न उक्तियों, अलंकारों व दृष्टान्तों को अपने में संजोए समान गति से आगे बढ़ा है। पण्डिता धाय रानी के हठ से लाचार जब सुदर्शन को जैसे-तैसे महलों में पहुँचाने के उपक्रम में उसके आस-पास अवसर की ताक में चक्कर लगाती है तो उसका भी बहुत ही यथार्थ चित्र आचार्य भिक्षु की शब्द-तूलिका के द्वारा चित्रित हुआ है—

ज्यूं दूध देखी मंजारिका, फिरै छै उंली-सोली ।

ज्यूं सेठ सुदर्शन ऊपरे, धाय आय फिरे छे दोली ॥

बिल्ली की यह उपमा कितनी यथार्थ है? इसका सहज ही अन्दाज लगाया जा सकता है। धाय विविध छल-प्रयत्नों से सुदर्शन को महल में ले आती है, किन्तु बलपूर्वक किसी के हृदय को नहीं जीता जा सकता। सुदर्शन को महल में लाने में तो धाय जैसे-तैसे सफल हो गई किन्तु उसे अपने व्रत से चलित करता उसके वश की बात नहीं थी। रानी द्वारा विविध प्रकार की शृंगार-चेष्टाओं के बावजूद भी सुदर्शन अपने हृदय में चिन्तन करता है—

हिवे सेठ करे रे विचार, ए कांई होय जासी कामणी ।

ए आपेइ जासी हार, ए कांई करेला मांहरो भामणी ॥

ए आय बणी छै मोय, ते कायर हुवां किम छूटिये ।

होणहार जिम होय, मों अडिग नै कहो किम लूटिये ॥

ए प्रत्यक्ष कामनै भोग, मोने लागै छै वमिया आहार सारिखा ।

तो हूँ किम करूँ भोग संजोग, मोने सुगत सुखांरी आई पारिखा ॥

जो हूँ करूँ राणी सूं प्रीत, तो हूँ करूँ कर्म बांधी जाऊँ कुगत में ।

चिहूँ गत में होऊँ फजीत, घणो भ्रमण करूँ इण जगत में ॥

मोने मरणो छै एक बार, आगण पाछल मो भणी ।

नुखां दुख होसी कर्म लार, तो सेठो रहूँ न चूकू अणी ॥

ओ मल-मूत्र तणो भण्डार, कूड कपट तणी कोथली ।  
इणमें सार नहीं छै लिगार, तो हूं किण विघ पामूं इण सूरली ॥  
अणेक मिले अपछरा आण, रूप करे रलियामणो ।  
त्याने पिण जाणूं जहर समान, म्हारे सुगत नगर में जावणो ॥

स्व-प्रवेशी साधक के लिए यही चिन्तन उपादेय है । सुदर्शन एक मुमुक्षु साधक था । भौतिक और क्षणिक विकारों से उसका हृदय निर्लिप्त था । विषयासक्ति मिट चुकी थी । मुक्ति का परम पद प्राप्त करने की तीव्र उत्कंठा उसके दिल में परिव्याप्त थी । विकृति के साथ ऋय-विक्रय का प्रपंच उसने नहीं सीखा । इसलिए वह एक धीर, वीर और गम्भीर साधक की श्रेणी में अवस्थित था । कालिदास ने भी कहा है—

**विकारहेतौ भुवि विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः ।**

सुदर्शन का यह चिन्तन उसकी साधना के अनुकूल ही था । उसके स्थान पर यदि दूसरा व्यक्ति होता तो शायद अपना सत्त्व कायम रख सकता या नहीं । किन्तु सुदर्शन इस कड़ी परीक्षा में पूर्णतः उत्तीर्ण हुआ, यह असन्दिग्ध है ।

संस्कृत कवियों ने अपनी भाषा में कहा है— विनाशकाले विपरीत बुद्धिः । जब मनुष्य का विनाश निकट आता है तब उसकी बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है । सियार की मौत नजदीक आने पर वह गाँव की तरफ दौड़ता है । रानी अपनी समस्त श्रृंगार चेष्टाएँ करके सब हार चुकी तब कुपित होकर भय प्रदर्शित करती है—

पुरुष सुकोमल हुवै छै हियारो, पिण तू तो कठण कठोरो ।  
म्हारा वचन सुणीनें तू न प्रजलियो, तू तो दीसे निपट निठोरो ॥  
प्रगलायो भाटो पिण पगले, पिण तू न प्रगले प्रगलायो ।  
लोक भेलो कहै छै तोनें, पिण म्हारे तो मन नहीं भायो ॥  
थोड़ी सी समझ तो आण हिया में, कह्यो म्हारो मानों ।  
नहीं तो खुराबी करसूं भारी, कर देसूं जाबक हैरानों ॥  
हूं बलि-बलि वचन कहूं छूं तोनें, तू नहीं माने छै मूली ।  
बांका दिन आया दीसे थारा, तोने तुरत दिरासूं सूली ॥  
तू बोलायो पिण मूलै न बोलै थे मुंहढो राख्यो छै भीचो ।  
अजेस कह्यो मान हमारो, नहीं तो मराऊं तोनें कुमीचो ॥  
बार-बार कहूं छूं सेठ तोनें, म्हासूं कर मनमानी प्रीतो ।  
नहीं तो कूडोई आलदेसूं तो माथे, करसूं लोकां में फजीतो ॥

रानी द्वारा मौत का भय दिखाने पर भी सुदर्शन अडिग रहा । उसे जीवन का मोह और मृत्यु का भय नहीं था । स्वीकृत नियम और व्रत का पालन ही उसके लिए अभीष्ट था । रानी का अनुनय और भय दोनों ही सुदर्शन को शुभ करणी से डिगा नहीं सके । उसकी मौन और उदासीन वृत्ति रानी को असह्य थी । व्याज की आशा में मूलधन ही लुट चुका था । रानी की गति सांप-छुछुन्दर की तरह हो गई । उसने नहीं सोचा था कि उसे अपने कृत्य का यों पश्चात्ताप करना पड़ेगा । चारों ओर से निराश होकर वह मन में सोचती है—

लेणा सूं देणे पड़ी, बले उलटी खोई लाज ।

लेने के देने पड़ गए । चौबेजी छबेजी की आशा में दुबेजी ही रह गए । सारी लोक लज्जा नष्ट हो गई । यदि राजा को इस बात का पता लग जाएगा तब मुझे जीवित ही नहीं छोड़ेंगे । न जाने किस पाप का यह प्रायश्चित्त मुझे करना पड़ रहा है । किन्तु खेद ! मानव का यह कितना बड़ा मनोदोष है कि वह अपनी गलती को जानकर भी उसका परिष्कार नहीं करता । लोकापवाद से बचने के लिए वह सच्चे पर भी झूठा अभ्याख्यान लगाने को तत्पर रहता है । रानी ने भविष्य की चिन्ता न करते हुए अपने दोष को ढँकने के लिए आखिर सुदर्शन पर झूठा कलंक मढ़



ही दिया । वह अपना शरीर क्षत-विक्षत कर लेती है । बाल नोच लेता है । वस्त्र फाड़ लेती है, तथा सहमी हुई जोरों से रोकर पहरेदारों को आवाज देती हुई कहती है—

ओ सेठ सुदर्शन पापियो, तिण मुझसूँ कियो अतिजोर ।  
ओ किण मारग होय आवियो, बले बोली वचन कठोर ॥  
म्हारो अंग विलूरी कस तोड़ने, फाड़्या महामंद चीर ।  
हिवे घणी बात के ही कहूँ, मैं राख्यो शील सधीर ॥  
ए बात कहो सहू राय ने, ज्यूँ करे सेठनी जी घात ।  
बले अर्ज न माने केहनी, जेज न करे खिण मात ॥

राजा ने जब सेवकों के द्वारा कथित दुर्घटना का वृत्तान्त सुना तो सहसा ही आपे से बाहर हो गया और बिना कुछ विचार किए शूली की सजा सुना दी । प्राचीन दण्ड-व्यवस्था में शूली की सजा बेरहमी और दर्दनाक मौत की निशानी होती थी । जहाँ जीवित मनुष्य के तिल-तिलकर मरने की कल्पना से ही दिल काँप उठता है, वहाँ सजा भुगतने वालों को कितनी भयंकर पीड़ा होती होगी, इसकी कल्पना जड़ लेखनी के द्वारा नहीं बताई जा सकती । सुदर्शन के मृत्यु-दण्ड का दुःखद संवाद भाषा वर्णना के पुद्गलों के समान चारों ओर फैल गया । शहर के विशिष्ट नागरिकों ने विचार किया कि सुदर्शन पूर्ण निर्दोष है । यह घटना पूर्व कृत कर्मों का ही दुष्परिणाम है । हमारा कर्त्तव्य है कि हम राजा के पास जाकर अनुनयपूर्वक सुदर्शन की निर्दोषता प्रमाणित करें । यद्यपि राजा का एकतन्त्र राज्य है, फिर भी जन-भावना की कद्र तो राजा का कर्त्तव्य होगा ही ।

नागरिकों का एक शिष्ट मण्डल राजा के पास जाता है और दृढ़ विश्वास की अभिव्यक्ति के साथ निवेदन करता है—

पूर्व थकी पश्चिम दिशे, कदाच ऊगे भाण ।  
तो पिण सेठ शील थी न चले, जो जावे निज प्राण ॥  
कदा मेरू चलायो पिण चले, कदा शशि मूके अंगार ।  
तो पिण सेठजी शील थी, चले नहीं लिगार ॥  
कदा गंगा ही गल्टी बहे, सायर लोपे कार ।  
तो ही सेठ शील थी नहीं चले, व्रत पाले एकधार ॥

एकतन्त्र की सबसे बड़ी असफलता वहाँ है, जहाँ जन-भावना का उचित समादर नहीं है । जन-भावना के उचित पहलुओं को दृष्टिगत रखते हुए नीर-क्षीर विवेक संयुक्त एकाधिपत्य स्यात् जनतन्त्र की अपेक्षा अधिक सफल भी हो सकता है । राजा ने जन-भावना को आदर नहीं दिया । सच्चे को झूठा ठहरा कर कहा—

झूठा नै साचो करो, आ किहां की रीति ।  
थे घर जावो आपणे, नहीं तो होसी फजीत ॥

राजा के शब्दों से महसूस होता है कि उस समय एकतन्त्र में एक प्रकार का उन्माद घुस गया था । शास्ता के लिए हर स्थिति में सन्तुलन आवश्यक होता है । जन-भावना के अनुरूप कार्य समय पर न भी हो किन्तु उसे समझने में तो कोई आपत्ति होनी ही नहीं चाहिए । किन्तु यह भी एक तथ्य है कि प्रायः सत्ता प्राप्ति के साथ-साथ अधि-कारों का थोड़ा बहुत उन्माद आ ही जाता है । जन-भावना को न समझने वाला शासक कभी लोकप्रियता नहीं पा सकता । सुदर्शन चरित का यह स्थल तत्कालीन राज्य-व्यवस्था और दण्ड नीति पर प्रकाश डालता है ।

वित्तथ अभ्याख्यान और शूली की सजा मिलने पर भी सुदर्शन के हृदय में रानी और राजा के प्रति किसी प्रकार का विद्वेष जागृत नहीं हुआ । उसने अपने वचाव का प्रयत्न भी नहीं किया । यदि कोई अपर व्यक्ति वहाँ होता



तो अपने बचाव के लिए न जाने कितने यत्न करता । अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने के लिए न जाने कितने प्रमाण प्रस्तुत करता । किन्तु सुदर्शन के हृदय में सत्य के प्रति अखण्ड श्रद्धा थी । इसी दृढ़ विश्वास के कारण उसे अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं समझी । संसार में सबसे अधिक निकट स्नेह-सूत्र पति-पत्नी के बीच होता है । किन्तु सजा घोषित होने के बाद भी अपनी पत्नी मनोरमा के मिलन-प्रसंग में उसे सान्त्वना देता हुआ, राजा-रानी के प्रति किसी प्रकार की शिकायत न करता हुआ यही कहता है—

सेठ कहे सुण मनोरमा नारी, पूर्व पाप कियो मैं भारी ।  
ते पाप उदे आयो अब म्हारो, भुगत्यां बिन नहीं छुटकारो ॥  
इण बातरो किणनें नहीं दीजे दोषो, वले किणसूँइ न करणो रोषो ।  
तुम्हें चिन्ता मकरो म्हारी लिगारो, म्हारो न हुवे मूल विगारो ॥

सुदर्शन का कथन हृदय की ऋजुता और समता को प्रकट करता है । एक आदर्श एवं धर्म-निष्ठ व्यक्ति की धीरता और गम्भीरता बहुत ही सम्यक् रूपेण परिलक्षित होती है । प्रतिकूल परिस्थिति को कर्मजन्य प्रतिफल मानकर समता सहन करना वास्तव में वैराग्य और सत्यनिष्ठा का चरम उत्कर्ष है । पति के महान् आदर्श की प्रतिच्छाया उसकी पत्नी में भी दृष्टिगोचर होती है । उस विषम स्थिति में मनोरमा ने सुदर्शन को जिन शब्दों में प्रत्युत्तर दिया है, वह वस्तुतः ही नारी समाज के गर्वोन्नत भाल का प्रतिभू है । मनोरमा का कथन बहुत ही हृदयग्राही बन पड़ा है—

सेठ ने पिण सन्तोषे मनोरमा नारी ।  
थे मत किज्यो चिन्ता लिगारी ॥  
केवली ए भाव दिठा जिम हुसी ।  
थे पिण राखज्यो घणी खुशी ॥  
दुख हुवे छै पूर्व संचित कर्मा ।  
थे पिण गाढा राखज्यो जिनधर्मा ॥

संकट के समय पति को इस प्रकार दृढ़ साहस बँधाना, आदर्श नारी का ही कर्तव्य हो सकता है । मनोरमा के शब्दों में सत्य एवं शीलनिष्ठा नारी की अन्तरात्मा बोल रही थी । इसमें सत्य और शील का वह अद्भुत ओज भरा है, जिसके श्रवण मात्र से हृदय में त्याग और बलिदान की भावना जागृत होती है । मनोरमा की वाणी से यह सिद्ध होता है कि नारी संकट के समय सिर्फ रोना ही नहीं जानती, वह अपने पति के दुःख में हाथ बँटाकर सहचरी का अनुपम आदर्श उपस्थित कर सकती है । मनोरमा के हृदयोद्गार सचमुच ही उसके दृढ़ धार्मिक विश्वास और महान् धैर्य के सूचक हैं ।

सुदर्शन को शूली के नीचे खड़ा कर दिया गया । जल्लाद राजा के आदेश की प्रतीक्षा में है । काल का कूर दृश्य उपस्थित हो रहा है । मौत को अति सन्निकट जानकर सुदर्शन का हृदय किंचित् भी विचलित नहीं हुआ । राजा और रानी के प्रति मन में जरा भी द्वेष नहीं है । इस भीषण संकट को भी अपने कर्मों का प्रतिफल समझकर वह मन में सोचता है —

कर्म सूँ बलियो जग में को नहीं, बिन भुगत्यां मुगत न जाय ।  
जे जे कर्म बाण्ड्या इण जीवड़े, ते अवश्य उदे हुवे आय ॥  
ज्यूँ मैं पिण कर्म बाण्ड्या भव पाछलै, ते उदे हुवा छै आय ।  
पिण याद न आवै कर्म किया तिकै, एहवो ज्ञान नहीं मों मांय ॥  
के मैं चाडी खाधी चोतो, दिया अणहुंता आल ।  
ते आल अणहुंतो शिर मांहरे, निज अवगुण रह्यो छै निहाल ॥

के मैं दोपद चोपद छेदिया, के छेदी वनराय ।  
के भात-पाणी किणरा मैं रूंधिया, के मैं दीधी त्याने अन्तराय ॥  
के मैं साधु-सती संतापिया, के मैं दीया कुपात्र-दान ।  
के मैं शील भांग्या निज पारका, के मैं साधों रो कियो अपमान ॥

सुदर्शन का यह आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत चिन्तन—“संपिकवए अप्पगमप्पएणं” का आदर्श उपस्थित करता है। पर की भूल और दोष द्वारा सम्प्राप्त दुःख को स्वकृत कर्मफल मानकर आत्मतोष करना ही विज्ञता का लक्षण है।

शूली का सिंहासन बना हुआ देखकर लोक-निन्दा के भय से अभया आत्महत्या कर लेती है। आत्म-हत्या धार्मिक एवं सामाजिक दोनों दृष्टियों से ही गर्हणीय है। आवेश के वश में मानव का कृत्याकृत्य विवेक लुप्त हो जाता है। वह इहलौकिक आपदाओं से मुक्त होने को आतुर हो उठता है, किन्तु क्या यह निश्चित है कि उसे परलोक में मनोनुकूल संयोग ही मिलेगा? धर्म-दृष्टि से आत्म-हत्या एक जघन्य अपराध है और कायरता का प्रतीक है। उसका प्रतिफल भी भोगना पड़ता है। अभया ने आत्म-हत्या की। इहलोक से मुक्त होकर पाटलीपुत्र के श्मशान में व्यन्तर योनि में उत्पन्न हुई।

सुदर्शन अपने पूर्व निर्धारित अभिग्रह से साधुत्व स्वीकार करता है। साधक जीवन के विषम परीषहों को समभाव से सहन करता हुआ सतत अध्यात्म भावना में रमण करता है। जीवन की एक कड़ी कसौटी पर खरा उतरा, किन्तु अभी कुछ और परीक्षा अवशिष्ट है। मुक्ति मार्ग के बीच कुछ बीहड़ पहाड़ियों को और पार करना होगा। वह एक महीने की घोर तपस्या में रत गुरु की आज्ञा से एकाकी विहरण करता हुआ क्रमशः पाटलीपुत्र में आया। पाटलिपुत्र की सुप्रसिद्ध वेश्या देवदत्ता ने तीन दिन तक अपने घर में रखकर विविध कुचेष्टाओं से सुदर्शन को व्रतभ्रष्ट करने का प्रयास किया, किन्तु सुदर्शन इस काजल की कोठरी से भी बिल्कुल बेदाग बच आया। नियम और लक्ष्य के प्रति दृढ़ विश्वास ही उस अदम्य शक्ति का स्रोत प्रवाहित करता है जिसके प्रभाव से व्यक्ति कड़े से कड़े परीक्षण में भी पूर्णक प्राप्त करता है।

वेश्या के जाल से मुक्त होकर सुदर्शन ने आत्म-समाधि का निर्णय किया। वह श्मशान भूमि में जाकर पादपोषण गमन अनशन स्वीकार करता है, किन्तु श्रेय प्राप्ति में अनेक विघ्न भी उपस्थित होते हैं। अभया रानी जो इसी स्थान पर राक्षसी के रूप में उत्पन्न हुई थी, विविध वैक्रिय रूप बनाकर उसे रिझाने और व्रत-भ्रष्ट करने का असफल प्रयास करने लगी। शृंगार कुचेष्टाओं से जब सुदर्शन चलित नहीं हुआ तब वह अत्यन्त कुपित हो उठी और नाना प्रकार के दैहिक कष्ट देने लगी। सुदर्शन ने किसी प्रकार का प्रतिकार नहीं किया और शान्त रहा। शील सहायक देव उपस्थित हुए और राक्षसी के कष्ट को निराकृत किया। सुदर्शन के साम्य-योग की आराधना में भावों का उत्कर्ष ऊर्ध्वगामी हो रहा था। उसे राक्षसी पर द्वेष और कष्ट निवारक देवों पर किसी प्रकार का राग नहीं था। राग-द्वेषरहित इस पुण्य अवस्था में सुदर्शन को कैवल्य-प्राप्ति हुई। देवों ने कैवल्य महोत्सव मनाया। सुदर्शन ने समता-धर्म का प्रतिबोध दिया। कैवल्य महिमा देखकर राक्षसी का हृदय-परिवर्तन हुआ। उसे अपने कृत्यों के प्रति तीव्र लज्जा की अनुभूति हुई। पश्चात्ताप की अग्नि में जलती हुई अपने पूर्व-कर्मों के लिए मुनि से पवित्र हृदय से क्षमा-याचना करने लगी—

अपराध खमावे देवी आपरो, थे खमज्यो मोटा मुनिराय ।  
हुं पापण छूं मोटकी, मैं कीधो अत्यन्त अन्याय ॥  
मैं अनेक उपसर्ग दिया आपने, कीधो छैं पाप अधोर ।  
तिण पाप थकी किम छूटसूं, खमाऊं बारूँ बार कर जोर ॥

यह प्रसंग क्षमा और समता की विजय-गाथा है। प्रतिपक्षी के हृदय-परिवर्तन का एक बेजोड़ उदाहरण है। हिंसा का अहिंसात्मक प्रतिकार किस प्रकार हो इसका सुन्दर निदर्शन है। धर्म का आधार हृदय-परिवर्तन है, बल-



प्रयोग और शक्ति नहीं। सुदर्शन ने अपनी अद्भुत क्षमता के द्वारा राक्षसी का हृदय-परिवर्तन कर दिया, यह इसका सजीव प्रतीक है। इस प्रकार महान् साधक सुदर्शन जीवन की अनेक दुस्तीर्ण परीक्षाओं में सम्यक्तया उत्तीर्ण होकर अपनी आत्म-साधना में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ क्षमा और समता का महान् आदर्श उपस्थित करके हृदय-परिवर्तन के माध्यम से एक पापात्मा को प्रतिबोध देकर मुक्ति के अजरामर शिखर पर आरूढ़ हुआ।

सुदर्शन चरित में उपन्यस्त कथा-सूत्र स्वयं ही रोचक और हृदयग्राही है। आचार्य भिक्षु की लोकजीवन लेखनी का आश्रय पाकर वह और भी निखार पा गया है। सुदर्शन चरित का रचनाकाल आचार्य भिक्षु की साहित्य और अनुभव-परिष्कृति का उत्कर्ष काल था। उस समय तक वे अपने जीवन के ६७ वसन्त देख चुके थे। जैसा कि उनकी लेखनी से परिज्ञात है—

एक चरित कियो सुदर्शन सेठ रो, नाथद्वारे मेवाड़ मंझार ।  
संवत् अठारे पच्चासे समे, काती सुद पांचम शुक्रवार ॥

आचार्य भिक्षु के महान् अनुभव, प्रखर साहित्यिक प्रतिभा और जीवन-साधना के मौलिक सूत्रों का समन्वित दर्शन सुदर्शन चरित में होता है। विविध उपमा, अलंकार, कल्पना और भावभरे चित्रणों के संयोग से लोकगीतों का आश्रय पाकर यह सहज ही जन-भोग्य काव्य बन गया है। इसकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह काव्य श्रेयोऽभिमुख मानस के लिए आत्मतृप्ति की खुराक देता है तथा जीवन-पथ में भटके हुए प्राणी को सही दिशा-दर्शन देता है।

**प्रकृति-चित्रण**—अन्य गेय काव्यों की तरह सुदर्शन चरित में प्रकृति चित्रण भी यथारूप हुआ है। वसन्त ऋतु के वर्णन में आचार्य भिक्षु के शब्द-शिल्प का सहारा पाकर ऐसा प्रतीत होता है मानों प्रकृति का कण-कण प्रफुल्लित होकर स्वयं ही बोल रहा है—

आयो आयो हे सखी कहीजै मास वसन्त, ते ऋतु लागे छे अति ही सुहामणी ।  
सहु नर-नारी हे सखी, इणरित हुवे मयमत्त, त्याने रमण-खेलणनें छे रितु रलियामणी ॥  
फूल्यो रहे सखी चम्पक मखो अधाम, फूल्या छे जाह जुही ने केतकी ॥  
फूल्या फूल्या हे सखी बले फूल गुलाब, बले फूल्या छे रंख केवड़ा तणा ।  
नांहना मोटा हे सखी फलिया रंख सताब, ते फल फूल पानां कर ढलिया घणा ॥  
फूली फूली रहे सखी मोरी सहु वनराय, बले ओबां लगी मांजर रलियामणी ।  
महक रही छै हे सखी तिण बागरे मांय, तिण गन्ध सुगन्ध लागे सुहामणी ॥  
तिण ठामे हे सखी कोयल करे टहूकार, बले मोर किंगार शब्द करे घणा ।  
चकवां-चकवी हे शब्द करे श्रीकार, बले अनेक शब्द गमता पखियां तणा ॥

वसन्तु ऋतु में उद्यान का यह प्रसाद-गुण-संवलित-वर्णन वास्तव में सूक्ष्म प्रकृति-चित्रण का चमत्कार है।

### यथार्थ लेखनी का चमत्कार

आचार्य भिक्षु स्पष्टवादी थे। वस्तु-स्थिति के निरूपण में उनकी लेखनी निर्भय होकर चली है। उन्होंने अनुभूत सत्य का दर्शन प्रस्तुत किया है। यह भी एक तथ्य है कि सत्य सदा कटु होता है। आचार्य भिक्षु ने अपने जीवन का सत्य की उपासना में ही उत्सर्ग किया था। अतः उनकी लेखनी में सत्य का परिपाक परिलक्षित होता है। मानव-प्रकृति के कटु सत्यों का उद्घाटन करने में उनकी लेखनी ने जिस निर्भीकता का परिचय दिया है, उससे वह सामान्य बुद्धि के लिए कटु हो सकती है, किन्तु उसकी सत्यानुभूति निर्विकल्प है। उन्होंने अपनी अनुभूतियों को ज्यों का त्यों रख दिया, फिर भी उनका विवेक सदा जागृत रहा। उन्होंने कुलटा नारी का बहुत ही सुन्दर भाव-चित्र प्रस्तुत किया है—

डेली चढती डिंग-डिंग करे, चढ जाये डूंगर असमान ।  
घर माहे बैठी डरे करे, राते जाए मसाण ॥  
देख बिलाड ओजके, सिंह ने सन्मुख जाय ।  
सांप ओसीसे दे सुवे, स ऊन्दर सूँ भिडकाय ॥  
कोयल मोर तणी परे, बोलेज मीठा बोल ।  
भितर कड़वी कटुकसी, बाहिर करे किलोल ॥  
खिण रोवे खिण में हँसे, खिण दाता खिण सूम ॥  
धर्म करतां धूँकल करे, ए सी नार अलाम ।  
बाँदर ज्यू नचावे निज कंतनें, जाणक असल गुलाम ॥  
नारी नें काजल कोटड़ी, बेहूँ एकज रंग ।  
काजल अंग कालो करे, नारी करे शील भंग ॥  
नारी ऐ बन बेलडी, बेहूँ एक स्वभाव ।  
कंटक हंख कुशील नर, ताहि विलम्बे आय ॥  
विरची बाघण स्यूँ बुरी, अस्त्री अनर्थ मूल ।  
पापकरी पोते भरे, अंग उपावे सूल ॥  
मोर तणी पर मोहनी, बोले मीठा बोल ।  
पिण साप सपूँछो ही गिलै, आले नर, नें भोल ॥  
पुरुष पोत कपड़ा जिसौ, निर्गुण नितनवी भांत ।  
नारी कातर बस पाड्यो, काटत है दिनरात ॥  
बाघण बुरी बन मांहिली, बिलगी पकड़े खाय ।  
ज्यूँ नारी बाघण बस पड्यो, नर न्हासी किहां जाय ॥  
फाटा कानां री जोगणी, तीन लोक में खाय ।  
जीवत चूँटे कालजो, मूँआ नरक ले जाय ॥  
नारी लखणां नाहरी, करे निजरनी चोट ।  
केयक संत जन उबर्या, दया-धर्म नी ओट ॥  
त्रिया मदन तलावड़ी, डूवो बहु संसार ।  
केइक उत्तम उगरया, सद्गुरु वचन संभार ॥

+ + +

जिम जलोक जल मांहिली, तिण नारी पिण जाण ।  
उवा लागी लोही पीवे, नारी पिए निज प्राण ॥  
राता कपड़ा पहरनें, काठा बांध्या माथा रा केश ।  
हस्यां महन्दी लगायनें, नारी ठगियो देश ॥  
लोक कहे ग्रह बारमों, लागां हणे कहे प्राण ।  
आ न्हाखे नरक सातमी लगे, नारी नव-ग्रह जाण ॥

कुसती का यह वर्णन अत्यन्त रोचक बन पड़ा है। उन्होंने इस धरातल पर जो कुछ देखा, परखा, अनुभव किया, उसे ही सहज शब्दों में लोगों के समक्ष प्रस्तुत किया। यही कारण है कि उनके निरूपणक्रम में एक वैशिष्ट्य रहा, वह संघटन रहा, जिसमें उनका काव्य तत्क्षण लोकमानस के अन्तःस्तल तक अपनी भाव-संपदा पहुँचा सका।



आचार्य भिक्षु के काव्य में एक ओर जहाँ सरलता है, वहाँ गहनता भी है पर उनके निरूपण वैशिष्ट्य के कारण गहनता सरलता में परिवर्तित हो गई। काव्य-सृजन में लोक-जनीन उक्तियों और उपमाओं का प्रचुर प्रयोग हुआ है। उपरोक्त वर्णन में इसका सम्यग् दिग्दर्शन होता है। कुलटा स्त्री के चरित्र के बहुत ही सुन्दर चित्र खींचते हुए उन्होंने उसे काजल कोटड़ी, बन बेलड़ी, फाटा कानां री जोगणी, मदन तलावड़ी, जलोक आदि विशेषण दिए हैं, जो उनकी काव्य-विशिष्टता का प्रतिभास कराते हैं। जहाँ जैसा औचित्य था उन्होंने वैसा ही चित्रण किया। इसलिए यह भी आवश्यक होता है कि उनके हार्द को आत्मसात करने के लिए उनके द्वारा दिए गए विवेचन की पृष्ठभूमि को यथावत् जाना जाए। उपर्युक्त पद्यों से सहसा यह नहीं समझ लेना चाहिए कि नारी-जाति के प्रति उनका अवहेलनापूर्ण दृष्टिकोण था। वे विशेषण उनके द्वारा वहाँ प्रयुक्त हैं, जहाँ उन्होंने कुसती नारी का विवेचन किया है—

कुसत्यां में अवगुण घणां, पूरा कह्या न जाय ।

पिण थोड़ा सा प्रगट करूं, ते सुणज्यो चित्त ल्याय ॥

अथवा “नहीं सरीखी सगली नार” अन्यत्र उनके द्वारा प्रयुक्त यह पद स्पष्टतया व्यक्त करता है कि नारीमात्र के लिए उक्त अभिमत नहीं था। उन्होंने सती नारी के प्रति तो आदरपूर्ण शब्दों में कहा कि सती सोलह गुण की खान होती है, सती सीता के तुल्य होती है, जिसका वर्णन जिनेश्वरदेव भी करते हैं।

**सुदर्शन चरित्र में दर्शन तत्त्व**—दर्शन की सत्ता काव्य को अस्वीकार्य नहीं है। किन्तु उसकी अस्पष्टता काव्य को निष्प्राण बना देती है। हर काव्य में उसका यथोचित पुट रहता है। सुदर्शन चरित्र एक कथा-काव्य है। सुदर्शन की जीवन-घटनाओं पर गुंफित हुआ यह काव्य जहाँ एक ओर विविध रागिनियों, लोकोक्तियों और उपमाओं से चित्त को आह्लादित करता है, वहाँ दूसरी ओर दर्शन-प्रेमी पाठकों को दार्शनिक खुराक भी प्रदान करता है। कर्मवाद जैन-दर्शन का एक मौलिक तत्त्व है। वह मानव-सृष्टि को किसी एकाधिपत्य की कठपुतली न मानकर कर्म-सिद्धान्त प्रस्तुत करता है। वह प्राणी के सुख-दुःख, ज्ञान-अज्ञान, निर्धनता-धनता आदि के लिए कर्म वैचित्य का प्रतिफल स्वीकार करता है। यदि एक ही व्यक्ति में कर्तृत्व का आरोपण किया जाए तो उसकी वृत्तियों में पक्षपात और विभेद क्यों रहता है? ईश्वर की सत्ता को सृष्टि का कर्त्ता-हर्त्ता स्वीकार करने से यह पक्षपात का राग-द्वेष क्या उसकी वीतरागता में बाधक नहीं बनता? इन सब दृष्टियों से हमें कर्मवाद का आश्रय लेना होगा। कर्मवाद की सत्ता स्वीकार कर लेने से उक्त समस्त प्रश्न स्वतः ही समाहित हो जाएंगे। आचार्य भिक्षु ने इसी कर्मवाद की विचित्रत को अत्यन्त सहज एवं सरल शब्दों में अभिव्यक्त किया है—

एक नर पंडित प्रवीण, एकण ने आखर ना चढे ।

एक नर मूर्ख दीन, भाग बिना भटकत फिरे ॥

एक-एकरे भरया भण्डार, रिद्ध सम्पत्ति घर में घणी ।

एकण रे नहीं अन्न लिगार, दीघा सोई पाइए ॥

एकण रे मूषाण अनेक, गहणा वस्त्र नितनवा ।

एकण रे नहीं एक, वस्त्र बिना नागा फिरे ॥

एक नर जीमें कूर, सीरा पूरी ने लापसी ।

एक बूके बूकस बूर, भीख मांगत घर-घर फिरै ॥

एक नर पोढ़े खाट, सेज बिछाई ऊपरे ।

एक नर जीमे हाट, आदर मान पावे नहीं ॥

एक नर होवे असवार, चढे हस्ती ने पालखी ।

एक चले सिर भार, गाम गाम हिड़तो फिरै ॥

एक-एक नर नें हुजूर, हाथ जोड़ी हाजर रहे ।  
 एक नर नें कहे दूर, निजर मेले नहीं तेहसूँ ॥  
 एक सुन्दर रूप सरूप, गमतो लागे सकल नें ।  
 एकज कालो कुरूप, गमतो न लागे केहनें ॥  
 एक एक नी निर्मल देह एक ने रोग पीड़ा घणी ।  
 किसौ किजे अहमेव, कियो जिसीई पाईर ॥  
 एक बालक विधवा नार, रात दिवस झूरे घणी ।  
 एक सज सोले सिणगार, नित नवला सुख भोगवे ॥  
 एक नर छत्र धराय, आण मनावे देश में ।  
 एक अलवाणे पाय, घर-घर टुकड़ा मांगतो ॥  
 एक बैठे सिंघासण पाय, हुकम चलावे लोक में ।  
 एक फिरे हाटो हाट, एक कोड़ी के कारणे ॥  
 एक सारे निजकाज, संयम मारग आदरी ।  
 एकज विलसे राज, काज बिगाड़े आपणो ॥

लोक-भाषा में किया गया कर्म-विचित्रता का यह विशद वर्णन भाषा की दृष्टि से जितना सरल है, उसमें उतनी ही अधिक दर्शन की गहरी पृष्ठभूमि का विवेचन मिलता है। लोकजीवन भाषा में दर्शन की गम्भीरता को अत्यन्त सरल शब्दों में प्रस्तुत करना सचमुच ही एक आश्चर्य है।

**काव्य की कसौटी पर सुदर्शन चरित**—सुदर्शन चरित को हम निःसंकोच एक परिपूर्ण काव्य की संज्ञा दे सकते हैं। काव्य क्या है? इस पर विद्वानों ने भिन्न-भिन्न मत प्रकट किये हैं। आज तक काव्य की कोई एक ऐसी परिभाषा नहीं बन सकी जिसके सम्बन्ध में यह कहा जा सके कि इस परिभाषा के अनन्तर अब और परिभाषाएँ नहीं बनाई जाएँगी। काव्य इतनी विशाल और विचित्र वस्तु है कि उसे एक-दो वाक्यों की परिभाषा में बाँध देना बहुत कठिन है। काव्य के स्वरूप के सम्बन्ध में भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों की भिन्न-भिन्न धारणाएँ हैं। आज तक की गई परिभाषाओं का उल्लेख सिर्फ लेख की कलेवर-वृद्धि मात्र ही होगा, अतः इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि उन परिभाषाओं की सूची में वृद्धि की जा सकती है पर उससे काव्य की परिभाषा समझने में कोई लाभ होगा, ऐसी आशा नहीं है।

कोशकार, कवि और समालोचक काव्य की परिभाषा करने में एकमत नहीं है किन्तु यदि इन सब परिभाषाओं की समन्विति में हम एषणा करें कि काव्य की परिभाषा करने वाले भिन्न-भिन्न विचारक किन-किन तत्त्वों को काव्य का घटक अवयव मानते हैं तो चार तत्त्व सहज ही हमारे हाथ लगते हैं, जिनका थोड़ा या बहुत अंशों में प्रायः सभी लक्षणकारों ने उल्लेख किया है। वे तत्त्व हैं—(१) भाव तत्त्व, (२) कल्पना-तत्त्व, (३) बुद्धितत्त्व और (४) शैलीतत्त्व। इनके आधार पर साधारणतया हम कह सकते हैं कि जिस रचना में जीवन की वास्तविकता को छूने वाले तथ्यों, अनुभूतियों, समस्याओं, विचारों आदि का भावना और कल्पना के आधार पर अनुकूल भाषा में सुसंगत रूप से वर्णन किया जाए, वह काव्य है।

**सुदर्शन चरित में भाव-तत्त्व**—उच्चकोटि के काव्य वे माने जाते हैं जिनमें भाव तत्त्व अर्थात् अनुभूतियों का वर्णन रहता है तथा दूसरे तत्त्व सहायक बनकर भावतत्त्व का साथ देते हैं। यहाँ एक बात और समझने की है कि अनुभूति या भाव उदात्त हो, मानव को ऊँचा उठाने वाला हो। काव्य उस चीज को नहीं छूता जो कुत्सित है। काव्य का उद्देश्य मानव को पशुत्व से ऊपर उठाना है, इसलिए महाकवियों ने आहार आदि शारीरिक क्रियाओं का वर्णन अपने काव्यों में नहीं के बराबर किया है। पाशविक प्रवृत्ति वाले लोग जिन बातों को बहुत रस लेकर सुनते और



सुनाते हैं, कवि लोग उन्हें छोड़कर आगे बढ़ जाते हैं। एक सुप्रसिद्ध लेखक ने कहा है कि विषय-वासना की तृप्ति करने में ही आनन्द होता तो मनुष्य की अपेक्षा पशु बहुत सुखी होते। किन्तु वास्तविकता यह है कि मनुष्य का आनन्द उसकी आत्मा में निहित है, न कि देह में। मनुष्य का ध्यान यदि मांसल-प्रसन्नता-प्राप्ति के उपायों में ही लगा रहेगा तो वह संसार में रहने के अयोग्य हो जाएगा। किसी भी ललित कला का यह उद्देश्य नहीं होता कि वह जीवन की कुत्सितता को लेकर आगे बढ़े। जो भव्य है, सुन्दर है, मधुर अनुभूतियों का संचार करने वाला है, उसी का वर्णन करना काव्य-कला, चित्रकला आदि कलाओं का ध्येय होता है। इसका यह अर्थ नहीं कि शृंगाररस का वर्णन काव्य में त्याज्य है। अपनी सीमा में रहने वाला शृंगार रस काव्योपयुक्त बन सकता है, वह विषय तभी बनता है, जब अपनी सीमा का अतिक्रमण कर देता है।

सुदर्शन चरित में भाव-तत्त्व बहुत सुन्दर रूप में गूथा गया है अथवा यों कहना चाहिए कि सुदर्शन चरित एक भाव-तत्त्व-प्रधान काव्य ही है। आचार्य भिक्षु ने अपने जीवन में जो कुछ देखा, सुना, परखा और अनुभव किया, उसी का एक बृहद् भाव-चित्र इस अद्भुत कलाकृति के साथ प्रस्तुत हुआ है। कुसती के वर्णन और कामातुर अभया की मनोदशा के चित्रण में उन्होंने जिन कटु सत्यों का रहस्योद्घाटन किया है, वे पद्य सिर्फ पद नहीं हैं, जाज्वल्यमान भाव-स्फुलिंग हैं। वे अन्तरतम को वेध देने वाले व्यंग-बाण हैं। वे तथाकथित शील की विडम्बना करने वालों की कुत्सित वृत्तियों के प्रति आभ्यन्तरिक टीस के परिचायक हैं। उनका प्रत्येक शब्द शील की ओट में पोषित होने वाले भ्रष्टाचार पर एक करारा प्रहार है। विचारों की द्रष्टिमा हृदयतम शब्दों का आश्रय पाकर निखर उठी है। सधे हुए शब्द, लोकजनीन सरणि और शृंखला भावक्रम ने एक अद्भुत प्रभावोत्पादकता उत्पन्न कर दी है।

सुदर्शन चरित में कल्पना-तत्त्व—कल्पना का कार्य है—अनुभूति के प्रकाशन में सहायता देना। कभी-कभी कवि कल्पना को इतनी अधिक प्रधानता दे देता है कि भाव गौण हो जाता है। ऐसी कल्पना हृदय में रस-संचार नहीं करती। संस्कृत के एक कवि ने किसी राजा के यश का वर्णन करते हुए कहा है—“राजन्! आपके यश की धवलमा को चारों तरफ फैलता देखकर मुझे आशंका हो गई कि इस धवलता से कहीं मेरे प्रियतमा के केश भी धवल (सफेद) न हो जाए।” इसमें कल्पना को खींचकर इतना तान दिया गया है कि हँसी आने के अतिरिक्त राजा के पौरुष के सम्बन्ध में हृदय में किसी प्रकार के भाव की उत्पत्ति नहीं होती। यहाँ कल्पना भाव को सहारा देने के लिए नहीं आई, बल्कि अपना ही खिलवाड़ दिखाने के लिए आई है। उपरोक्त उदाहरण में कल्पना भाव को फेंककर आगे निकल गई है। इस प्रकार की कल्पना को ‘ऊहा’ कहा जाता है। ऊहात्मक काव्य में वह शक्ति नहीं होती, जिससे हृदय में किसी प्रकार की हिलोर पैदा हो सके।

आचार्य भिक्षु ने अपने काव्य में कल्पना को इतना महत्व नहीं दिया जिससे भाव गौण हो जाए। सुदर्शन चरित के आद्योपान्त पारायण से ऐसा एक भी उदाहरण उपलब्ध नहीं होता, जहाँ कल्पना की दौड़ भाव से आगे निकल गई हो। कहना तो यों चाहिए कि कल्पना के प्रयोगों में उन्होंने कृत्रिम प्रयास किया ही नहीं। सहज भावना से उद्भूत कल्पनाओं का एक ऐसा सुन्दर सूत्र उनके काव्य में मिलता है जो कि वास्तविकता से अनुस्यूत है। नारी के लिए पर-पुरुष को ‘लहसुन’ की उपमा देकर उन्होंने अपने सहज, स्वाभाविक कल्पना-प्रयोग का परिचय दिया है। इसी प्रकार कुसती के लिए ‘जोंक’, ‘मदन तालाब’ आदि उपमाएँ देकर अपनी कुशल प्रतिभा को व्यक्त किया है। आचार्य भिक्षु की ये लोक-जनीन कल्पनाएँ और उपमाएँ काव्य-क्षेत्र में अन्यत्र दुर्लभ हैं। सफल कवित्व भी वही है, जो कल्पना की हवाई उड़ान न भरकर लोक-मानस का स्पर्श करे।

सुदर्शन चरित में बुद्धि-तत्त्व—काव्य में बुद्धितत्त्व कल्पना की तरह भाव को सहारा देने के लिए गौण रूप से रहता है। इसका प्रयोग स्वतन्त्र रूप से काव्य में नहीं किया जाता है। दर्शनशास्त्र में तो कई बार बुद्धि की अवहेलना कर दी जाती है। इसीलिए शेक्सपियर ने कवि को उन्मत्त की एक कोटि में रखा है। रोमन कवि व समीक्षक हारेस लिखता है—या तो यह कोई पागल है या कवि है। यह अतिशयोक्ति हो सकती है पर कवि बौद्धिक सीमाओं से बंधा नहीं होता। इसलिए कहा—‘निर्बन्धाः कवयः’। जो लोग तार्किक हैं, उन्हें प्रायः काव्य पसन्द नहीं आता क्योंकि



काव्य में हृदय-पक्ष की ही प्रधानता रहती है न कि मस्तिष्क-पक्ष की। कोई भी महान् कवि बुद्धिमत्ता का चमत्कार दिखाने के लिए काव्य लिखने में प्रवृत्त नहीं होता पर इसका अर्थ यह नहीं कि काव्य में बुद्धितत्त्व का प्रवेश ही निषिद्ध है। भावों के प्रकाशन में कभी-कभी असंगति रह जाती है। वहाँ बुद्धि का सहारा लेकर ही असंगति को दूर किया जाता है। कवि को इस बात का सदा ध्यान रहता है कि मैं कोई ऐसी बात नहीं कहूँ जिसे पढ़ या सुनकर लोग कहें—यह कैसे हो सकता है? इस विचार से वह अपनी बात को इस ढंग से कहता है कि जिससे उसका कथन बुद्धि-संगत हो जाए। बस, बुद्धि का काव्य में इतना ही स्थान है।

सुदर्शन चरित का अध्ययन करने से यह भली प्रकार प्रमाणित होता है कि आचार्य भिक्षु ने बुद्धि को भाव की अपेक्षा अनावश्यक अधिक महत्त्व कभी नहीं दिया। कुछ प्रश्नवाचक प्रसंगों का अपनी बौद्धिक कुशलता से सुन्दर समाधान भी किया है। प्रश्न हो सकता है कि क्या शूली का सिंहासन बन सकता है? किन्तु इसकी भूमिका बाँधते हुए उन्होंने सुदर्शन-चरित की १६वीं गीतिका में शील के अद्भुत चमत्कारों का वर्णन कर दिया। अतः शूली का सिंहासन होना कोई बड़ी बात नहीं। कुसती-वर्णन के सन्दर्भ में उन्होंने तीखे-व्यंग-बाणों की बौछार करते हुए बहुत ही स्पष्ट बातें कही हैं। क्यों और कैसे का समाधान करने के लिए अनेक घटनावलियों को उदाहरण रूप में भी रख दिया है। हाथ कंगन को आरसी क्या? प्रत्यक्ष के लिए प्रमाण की आवश्यकता नहीं होती (प्रत्यक्षे किं प्रमाणम्) घटित घटनावलियों के उदन्त प्रश्न को उत्पन्न होने से पहले ही समाहित कर देते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि आचार्य भिक्षु ने बुद्धि तत्त्व का सहारा अवश्य लिया है, किन्तु उसे भाव से प्रमुख स्थान कभी नहीं दिया।

**सुदर्शन चरित में शैली-तत्त्व**—शैली में वे सब बातें आ जाती हैं जो किसी भावाभिव्यक्ति के लिए आवश्यक होती हैं। भावाभिव्यक्ति का माध्यम भाषा है। इसलिए शैली में मुख्य बात भाषा की रहती है। सुदर्शन-चरित की भाषा के सम्बन्ध में कुछ प्रकाश पहले डाला जा चुका है। फिर भी कुछ विशेष बातें और हैं। भाव काव्य की आत्मा है तो भाषा उसका शरीर है। भाषा भाव को मूर्तिमान् करती है। अतः भाव और भाषा का परस्पर गहरा सम्बन्ध है। शृंगार रस के वर्णन में भाषा में कोमलता रहती है और वीर रस के वर्णन में कठोरता आ जाती है। भाव तभी जागृत होते हैं जब उनके अनुकूल भाषा का प्रयोग किया जाता है। बड़े-बड़े कवियों की भाषा में यही गुण विद्यमान रहता है। वे जानते हैं कि किस शब्द का किस स्थान पर प्रयोग करना है। वे जब वर्षा की नन्हीं-नन्हीं बूँदों के बरसने का वर्णन करते हैं तो उनकी पदावली से ध्वनित होने लगता है मानो सत्रमुच की बूँदें पड़ने का धीमा-धीमा शब्द हो रहा है किन्तु जब वे मूसलाधार वर्षा का वर्णन करते हैं तब भाषा बदल जाती है। जहाँ एक क्षुद्र नदी का वर्णन करना है, वहाँ मृदु-ध्वनि शब्दों की प्रयुक्ति आवश्यक है, किन्तु जहाँ वर्षा विषय समुद्र है, वहाँ भाषा में गर्जन होना चाहिए। एक अँग्रेज कवि पोप ने अपने समालोचना विषयक निबन्ध (Essay on Criticism) में लिखा है कि कविता में इतना ही पर्याप्त नहीं कि किसी प्रकार के कर्ण-कटु शब्दों का प्रयोग किया जाए, प्रत्युत आवश्यक है कि ऐसे शब्दों का प्रयोग हो, जिनके उच्चारण मात्र से अर्थ ध्वनित हो।

सुदर्शन चरित की शैली भाव-तत्त्व के ठीक अनुरूप सध पायी है। प्रकृति-चित्रण के प्रसंग में जो शब्द-लालित्य आचार्य भिक्षु द्वारा उपन्यस्त हुआ है उससे सहज ही वसन्त-ऋतु की दृश्याकृति आँखों के सम्मुख नाचने लगती है। शब्दचित्र और भावचित्र दोनों ही कोमलता से भरे हैं। वसन्त-चित्रण की यही कोमलता संग्राम-वर्णन के समय कठोरता बदल जाती है। देवताओं के साथ राजा का युद्ध इस प्रकार है—

राजा तणा छूटे, गोला नें बड़नाल ।  
सुभट हलकार्या, बोले सेठ ने गाल ॥  
राजा तणा सुभटां, तीर कबाण हाथ लेह ।  
दल सन्मुख बावे, जाणक वर्षे मेह ॥



सेठ तणा दल ऊपरे, राजा तणा छूटे बाण ।  
 कोकाट शब्द करता, पड़े बिजली जिम आण ॥  
 सूरु सुभट राजारा, ते हुवा साहस धीर ।  
 संग्राम में सूरु, कानी-कानी लागा बड़वीर ॥

इस प्रकार शैली तत्त्व की तुला पर भी सुदर्शन-चरित पूर्णतः खरा उतरता है। राजस्थानी साहित्य के क्षेत्र में काव्य साहित्य की परम्परा अति प्राचीन है। समय-समय पर विभिन्न कवियों ने अपनी अनुभूतियों को संजोकर काव्य साहित्य को समृद्ध बनाया। आचार्य भिक्षु का 'सुदर्शन चरित' निःसंदेह उसी काव्य-शृंखला की एक कड़ी होगा। जिसमें साहित्य, संस्कृति, कला और दर्शन का सुन्दर निदर्शन मिलता है। भाव, कल्पना, बुद्धि और शैली के मूलभूत साहित्यिक तत्त्व निकष पर यह शत प्रतिशत खरा उतरा है। अतः इसे निःसंकोच स्वतन्त्र और परिपूर्ण काव्य की संज्ञा देने में किसी प्रकार की झिझक नहीं होनी चाहिए।

**उपसंहार**—जीवन के शाश्वत और मौलिक तथ्यों का अस्खलित प्रकटीकरण आचार्य भिक्षु की काव्य-साधना का सहज गुण था। अनेक गहन विषयों को सरल भाषा में गूँथकर व्यावहारिक रूपकों द्वारा हृदयंगम कर देना उनकी विलक्षण प्रतिभा का प्रतीक रहा। उनके साहित्य की सर्वाधिक विशेषता यह है कि इन्होंने सनातन सत्य को परिभाषाओं के कृत्रिम और कठोर बन्धनों में बाँधने को कभी प्रयत्न नहीं किया। यही कारण है कि उनकी कृतियों में साहित्य स्वयं मूर्तिमान सत्य के रूप में अवतरित हुआ है। 'सुदर्शन चरित' इसका प्रमाण है। आचार्य भिक्षु ने तथ्यों को तोड़-मरोड़कर नहीं रखा किन्तु उनमें अपना स्पष्ट चिन्तन, सहमति और मतभेद प्रकट किया है। इतना होते हुए भी उनमें उनकी अनाग्रह वृत्ति साकार होकर निखरी है।

□□□□